REVIEW OF RESEARCH

"हिंदी साहित्य के शिक्षण में सांस्कृतिक अध्ययन शैली का प्रयोग"

डॉ. संजीव कुमार

महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा

ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 8 | MAY - 2019

शोध – सार (Abstract)

इस अध्ययन के तहत हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि किसी भी साहित्य को, उसकी वास्तविक व्याख्या को जानने – समझने में उस समाज की संस्कृति का क्या महत्व होता है. साहित्य में प्रयोग की जाने वाली भाषा का संबंध संस्कृति से किस प्रकार से संबंधित होता है इसे सही रूप में जानने के लिए हमें सामाजिक संरचना के विविध रूपों को जानना आवश्यक होता है. यही कारण है कि इन संदर्भोंमें सांस्कृतिक वैविध्य का अध्ययन जरुरी हो जाता है इन्हीं प्रसंगों पर इस शोध आलेख में विचार किया गया है

हिंदी साहित्य के संदर्भ में भाषा के स्तर को समझने के लिए भारतीय समाज की विविधता को इसलिए भी जानना जरुरी हो जाता है क्योंकि भारतीय समाज में बोली और भाषाओं में बड़े पैमाने पर विविधता पाई जाती है ऐसी स्थिति में हिंदी साहित्य के शिक्षण में सांस्कृतिक अध्ययन शैली के प्रयोगों पर विचार करना महत्वपूर्ण हो जाता है

इस शोध-पत्र में हिंदी साहित्य और भारतीय समाज की विविधताओं पर विचार करते हुए यह जानने- समझने का प्रयास किया गया है कि 'क्लासरूम' में सांस्कृतिक शैली का प्रयोग किस प्रकार से किया जाए साथ ही यह भी जानने का प्रयास किया गया है कि भाषा के स्तर पर सांस्कृतिक आधार क्यों जरुरी है और किस प्रकार से सीखने के क्रम में यह प्रयोग लाभकारी सिद्ध होता है.

शोध प्रविधि :- प्रस्तुत शोध पत्र में अवलोकन (गुणात्मक) तथा 'मेटा एनालायसिस' (मात्रात्मक) पद्धति का प्रयोग किया गया है तथा समाजशास्त्रीय शैली के आधार पर व्याख्या की गई है.

"हिंदी साहित्य के शिक्षण में सांस्कृतिक अध्ययन शैली का प्रयोग"

साहित्य की भाषा तथा विचार – विमर्श की भाषा का गहरा संबंध संस्कृति के साथ जुड़ा होता है इसलिए भाषा या साहित्य का अध्ययन मूल रूप से उस समाज का सांस्कृतिक अध्ययन होता है. स्वाभाविक है कि वगैर सांस्कृतिक आधार को समझे हम किसी भी समाज की भाषा या साहित्य को ठीक – ठीक नहीं समझ सकते हैं.

हिंदी साहित्य तथा भाषा का संबंध भारतीय भाषा परिवारों तथा भिन्न-भिन्न समुदायों और संस्कृतियों के साथ जुड़ा हुआ है इसलिए शिक्षण शैली में व्याख्या की भूमिका तथा व्याकरण की भूमिका पर विचार करना आवश्यक हो जाता है. क्योंकि जिन अन्य बोलियों तथा भाषाओं के साथ हिंदी जुड़ी हुई है उनमें से अधिकांश के व्याकरण हिंदी के व्याकरण से भिन्न हैं. बावजूद इस भिन्नता के इन भाषाओं के बीच एकरूपता भी देखी जा सकती है व्याकरण सम्मत विचार करने पर हिंदी साहित्य और भाषा के अध्ययन के औज़ार प्रायः अलग – अलग होने चाहिए. क्योंकि साहित्य लेखन में जो भूमिका व्याकरण की है ठीक वैसी ही स्थिति भारत के अन्य हिस्सों में हिंदी भाषा के प्रयोग में नहीं है इसे इस उदहारण से भी समझा जा सकता है कि हिंदी भाषा में 'चाय पी जाती है' लेकिन लेकिन भारत के कुछ हिस्सो में 'चाय खाई भी जाती है' जैसे वाक्यों का भी प्रयोग किया जाता है. अब यहाँ व्याकरण सम्मत 'पीना है' लेकिन प्रयोग के आधार पर खाने का भी इस्तेमाल किया जाता है. यहाँ व्याख्या स्वरूप यह भी कहा जा सकता है कि साहित्य में बोल – चाल की भाषा और लेखन की भाषा में अंतर होता है लेकिन साहित्य में या समाज में बोल चाल की भाषा का भी उतना ही महत्व है जितना महत्व व्याकरण सम्मत लेखन की भाषा का महत्व है. ऐसा प्रायः इसलिए भी देखने को मिलता है क्योंकि जब ठीक – ठीक व्याकरण की समझ रखने वाला साहित्यकार अपनी रचना में बंगाली चरित्र का निर्माण करेगा तो वह पात्र स्वाभाविक रूप से चाय खाता ही नजर आएगा. इसलिए चाय के साथ पिया जाना या खाया जाने जैसा वाक्य क्रम उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना महत्वपूर्ण है चाय का ग्रहण किया जाना फ़िर चाहे वह पेय पदार्थ के रूप में ग्रहण किया जाए अथवा खाद्य सामग्री रूप में. इसका अर्थ यह हुआ कि संवेदनात्मक और संप्रेषण के स्तर पर ही साहित्य या भाषा रुचिकर बनाई जा सकती है.

'काव्य' की परिभाषा में कहा भी गया है कि "शब्दार्थो सहितो काव्यम". अर्थात शब्द और अर्थ ही काव्य है और काव्य ही साहित्य है और साहित्य वगैर भाषा के तो हो ही नहीं सकता. इसका अभिप्राय यह है कि भाषा अथवा साहित्य के लिए शब्द, अर्थ और उसकी संस्कृति का जो महत्व है, ठीक उसी प्रकार का महत्व व्याकरण का नहीं है. व्याकरण साहित्य के क्षेत्र में कई संदर्भो के साथ स्वतः ही प्राप्त होने की भी अवस्था है जिसे कई तरह के प्रयोगों से प्राप्त किया जा सकता है.

भारतीय समाज में हिंदी भाषा को लेकर कई बहसें हो चुकी हैं. इन बहसों का जहाँ एक कारण हिंदी को समृद्ध करना था वहीं दूसरा महत्वपूर्ण कारण था भारतीय भाषाओं की विविधता को बरकरार रखते हुए केंद्र में हिंदी को स्थापित करना यही कारण है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र से लेकर डॉ. रामविलास शर्मा

तक हिंदी भाषा पर अनवरत विचार विमर्श चलते रहे हैं

महात्मा गाँधी इस गंभीरता पर विचार करते हुए लिखते हैं कि–

" अखिल भारत के परस्पर व्यवहार के लिए भी हमें भारतीय भाषा समूह में से एक ऐसी भाषा की आवश्यकता है, जिसे जनता का अधिकतम भाग पहले से ही जानता और समझता है और जिसे दूसरे लोग भी आसानी से सीख और समझ सकें" -1.

कहने की आवश्यकता नहीं कि गाँधी हिंदी को अपनाने के प्रति अपने आग्रह में इसे सीखने के लिए सरलता पर अधिक जोर देते हैं. ध्यान देने की बात यह है कि पूर्व के जितने भी विद्वान साहित्यकार अथवा राजनेता रहे हैं उन्होंने हिंदी के संदर्भ में सीखने सिखाने के क्रम को सरलता के साथ जोड़ने का प्रयास किया है. महात्मा गाँधी के साथ केशवचंद्र सेन, भारतेंदु हरिश्चंद्र लोकमान्य तिलक, महामना मालवीयजी, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन् सेठ गोविंद दास, आचार्य क्षितिमोहन सेन, सुभाषचंद्र बोस, राहुल सांकृत्यायन, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. संपूर्णानंद डॉ. राममनोहर लोहिया जैसे विद्वानों की भूमिका महत्वपूर्ण है

इस विषय पर जब हम गहराई से विचार करते हैं तब पाते हैं कि भारत में हिंदी भाषा को केंद्र में रखने पर दो समूह के भाषा अथवा बोलियों का मुद्दा अहम हो उठता है. पहला उत्तर भारतीय भाषाएँ एवं बोलियाँ तथा दूसरा दक्षिण भारतीय भाषाएँ उत्तर भारतीय भाषाओं का संबंध हिंदी से मिलता-जुलता रहा है लेकिन दक्षिण भारतीय भाषाएँ हिंदी के स्वरुप से भिन्न हैं उत्तर भारतीय भाषाएँ जो हिंदी से मिलती जुलती है उसे हिंदी की मातृभाषा भी कहते हैं जिसमें अवधी, बघेली, बागरी राजस्थानी, बंजारी, भद्रवाही, भरमौरी, भोजपुरी, ब्रजभाषा, बुंदेली, चंबेली, छत्तीसगढ़ी, गढ़वाली, हरियाणवी, मैथली आदि भाषाएँ अथवा बोलियाँ हैं. समस्या यह भी है कि इनमें से बहुत सी बोली तथा भाषाओं का स्वरुप हिंदी से मिलने जुलने के बावजूद भी इनका मिज़ हिंदी से अलग है. ऐसी स्थिति में उच्चारण अथवा लिंग-बोध की समस्या महत्वपूर्ण हो जाती है. स्वाभाविक है कि ऐसे में भाषा व्यवहार के प्रति यदि उदारवादी नीति न अपनाते हुए सख्त अनुशासन लागू किया जाएगा तो यह एक प्रकार की कठोरता को पैदा करेगा जिससे हिंदी की केंद्रीयता अथवा स्वीकारोक्ति को लेकर कठिनाई होगी. यही कारण है कि इन विद्वानों ने सरलता की ओर अधिक ध्यान दिया है.

हिंदी साहित्य में भाषा को लेकर विचार करने वाले विद्वानों में डॉ रामविलास शर्मा का सबसे महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है वे हिंदी पट्टी को लेकर भाषा से विचार तक के स्तर को समृद्ध करते हुए हरेक क्षेत्र में हस्तक्षेप तक की स्थिति पर विचार करते हैं. इसी क्रम में उनके और प्रसिद्द कवि नागार्जुन के बीच हुए बहस का अध्ययन करना अनिवार्य हो जाता है. हिंदी और मैथिली भाषा को लेकर किए गए इस विचार से बहुत सी बातें साफ़ हो जाती है

डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं कि– " मैथिली का व्याकरण हिंदी व्याकरण से भिन्न है. उसके शब्द भण्डार में जहाँ बहुत से शब्द हिंदी से मिलते– जुलते हैं, वहां काफ़ी शब्द हिंदी से भिन्न भी है उसका अपना एक समृद्ध साहित्य है और मैथिली में अभी भी गद्य– पद्य का साहित्य रचा जा रहा है. लेकिन हिंदी की दूसरी बोलियों का व्याकरण भी हिंदीसे भिन्न है. अवधी, ब्रज, भोजपुरी आदि का व्याकरण हिंदी से भिन्न है यह भिन्नता हम दूसरी भाषाओं और उनकी बोलियों में भी देख सकते हैं. मिसाल के लिए वेल्श और अंग्रेजी, प्रोवांसाल और फ्रेंच, लंहदा और पंजाबी आदि का व्याकरण एक– दूसरे से भिन्न है इसलिए व्याकरण की भिन्नता से यह साबित नहीं होता कि मैथिली को हिंदी से स्वतंत्र भाषा होनी चाहिए' - 2.

रामविलास जी के विचारो के अध्ययन से कई बातें स्पष्ट हो जाती हैं. सबसे महत्वपूर्ण तो यह कि व्याकरण की भिन्नता किसी भी भाषा के अध्ययन या उसके नजदीक होने में बड़ी समस्या नहीं है. दूसरी महत्वपूर्ण बात यह स्पष्ट होती है कि शब्द भंडार भाषा के लिए सर्वाधिक महत्व रखता है इस तरह वे व्याकरण की भिन्नता को स्वीकार करते हुए भी जिन कारणों से मैथिली जो एक अलग भाषा है उसे हिंदी के नजदीक मानते हैं

इसी क्रम में मैथिली और हिंदी के लेखक नागार्जुन का हस्तक्षेप भी गंभीरता के साथ प्रस्तुत होता है नागार्जुन रामविलास शर्मा जी के विचारों से अलग अपनी बात रखते हुए कहते हैं कि–" आज मिथिला के इलाकों में हिंदी का क्या हाल है? हाल यह है कि स्कूल – कॉलेज दस – दस वर्ष रट्टा लगा चुकने पर भी हमारी जीभ उस बेचारी का सम्मान नहीं कर पाती. 'ने' की नानी मर जाती है और 'को', 'के', 'की' की कचूमर निकल आती है, 'से' की साँस फूलने लगती है. मैथिली के क्रियापद और विभक्तियाँ हिंदी वाक्यों पर हावी हो जाती हैं"-3.

बाबा नागार्जुन इस संदर्भ में स्पष्ट करते हैं कि कैसे मैथिली हिंदी से अलग है? अब समस्या यह है कि हिंदी के जिन वाक्यों में को, के, की अथवा से या ने, से उसकी शुद्धता बनती है, उसी का प्रयोग मैथिली में नहीं है. स्वाभाविक है कि ऐसे में मैथिली भाषा के लोगों के लिए हिंदी को व्यवहार में लाना ठीक वैसा नहीं हो सकता है जो अन्य खड़ी बोली के क्षेत्रों के लिए होगा. यही कारण है कि रामविलास जी के विचारों को बाबा नागार्जुन इस संदर्भ में भाषाई सांप्रदायिक विचार के रूप में भी देखते हैं यह अतिवादी दृष्टि जरुर हो सकती है लेकिन नागार्जुन जिन व्यावहारिक समस्याओं को रेखांकित करते हैं उसका अध्ययन गंभीरता से किया जाना इस संदर्भ में जरुरी हो जाता है

बाबा नागार्जुन आगे कहते हैं कि–" बिना कर्ता और बिना कर्म के ही, बिना लिंग के और बिना वचन के ही मैथिली का क्रियापद वाक्य बोध करा देता है. यों भी हमारा मैथिली व्याकरण पुल्लिंग– स्त्रीलिंग या एकवचन, बहुवचन के झंझटों से काफ़ी दूर पड़ता है' -4

अब इस वैचारिक मतभेदों का अध्ययन हिंदी भाषा संबंधी बहुत सी समस्याओं की गुत्थी खोलता है. ध्यान देने की बात है कि हिंदी में कर्ता, कर्म, लिंग, और वचन के वगैर शुद्धता की कसौटी तैयार नहीं की जा सकती है. लेकिन मैथिली इससे मुक्त है यही कारण है कि जब कोई मैथिली समाज का व्यक्ति हिंदी लिखेगा या बोलेगा तो स्वाभाविक रूप से उसमें लिंग अथवा वचन को लेकर समस्याएं उत्पन्न होंगी इसके साथ ही उच्चारण की दृष्टि से देखा जाए तो न -ण, र - ड़, श - स के बीच फर्क नहीं के बराबर होगा. इसलिए स्वाभाविक रूप से इन जटिलताओं को समझते हुए ही अन्य क्षेत्रों को हिंदी से जोड़ा जा सकता है मसलन शुद्धता यहाँ कठोरता पैदा करेगी. यही कारण है कि अकादमिक जगत को छोड़ दिया जाए तो इस तरह की कठोरता को अन्यत्र कम देखा जाता है.

समस्या सिर्फ़ मैथिली के साथ ही नहीं है. यह अन्य बोली तथा भाषाओं के साथ भी है यही कारण है कि आज भी भारतीय समाज का व्यक्ति हिंदी बोलते ही अपने वाक्य संरचना से यह जाहिर कर देता है कि वह किस क्षेत्र का है यह समस्या तो सिर्फ उन क्षेत्रों की है जिन क्षेत्रों की बोली अथवा भाषा को हिंदी की मातृभाषा कही जाती है. लेकिन दक्षिण भारतीय भाषा, बंगला भाषा तथा उत्तर-पूर्व राज्यों की भाषा की संरचना हिंदी के लिए और भी जटिल है ऐसी स्थिति में किसी भी सूरत में शुद्धता की कसौटी पर हिंदी का प्रचारप्रसार अन्य देशों में करना तो दूर की बात है भारतीय समाज में ही गंभीर मुश्किलें पैदा करेगा

हिंदी की समस्या वस्तुतः सांस्कृतिक समस्या है इसलिए सांस्कृतिक अध्ययनों के आधार पर ही इन समस्याओं का समाधान हो सकता है और इसी रूप में इसका विस्तार भी संभव है.

प्रसिद्द विद्वान् डॉ. अमरनाथ कहते हैं कि –" हमारी सामासिक संस्कृति को वही भाषा अभिव्यक्त कर सकती है जिसका रूप भी सामासिक हो, जिसे किसी भी भाषा से शब्द या संस्कार ग्रहण करने से परहेज न हो. आज यह एक जटिल प्रश्न है कि क्या राजभाषा हिंदी का रूप ऐसा है? और यदि नहीं हैं तो इसके कारण क्या हैं? " - 5.

डॉ. अमरनाथ के प्रश्न गंभीर और जायज है. जब हम साझा संस्कृति का दम भरते हैं तब ऐसी स्थति में हमें किसी भी केंद्रीय मूल्य को स्थापित करने से पूर्व साझा सांस्कृतिक विरासत के मेल मिलाप को भी ध्यान में रखना ही होगा. भाषा संस्कृति से अलग नहीं होती है. इसलिए स्वाभाविक है कि केन्द्रीय भाषा के स्वरुप या गठन में संस्कृतियों का भी गठन हो. और यह तब तक संभव नहीं हो सकता जब तक हम शुद्धतावादी रवैये को छोड़ नहीं देते हैं

कर्ता, कर्म, वचन और लिंग हिंदी में वाक्य को स्पष्ट करते हैं लेकिन लिंग को लेकर हिंदी में सर्वाधिक समस्याएं देखने को मिलती हैजबकि लिंग के प्रयोग से सम्प्रेषण पर उतना अधिक प्रभाव नहीं पड़ता है. इसलिए 'क्लासरूम' में हिंदी को पढ़ाते वक्त संप्रेषण पर अधिक जोर देने की जरुरत है उदहारण के तौर पर यह भी देखा जाता है कि कई बार – 'मैं पानी पी रहा था की जगह बोला जाता है 'हम पानी पी रहे थे' जबकि वह व्यक्ति अकेले पानी पी रहा था. व्याकरण की दृष्टि से यहाँ वाक्य दोष है क्योंकि एकवचन की जगह बहुवचन का प्रयोग किया गया गया है. लेकिन सम्प्रेषण के स्तर पर यह भारतीय समाज के अंदर भी ग्रहण किया जाता रहा है. स्वाभाविक है कि ऐसे में अन्य देशों में हिंदी पढ़ानेके दरमियान 'मैं' और 'हम' के शुद्धतावादी फ़ॉर्मूले से परहेज करने की आवश्यकता है क्योंकि इस तरह के फर्क साहित्य अध्ययन से स्वाभाविक रूप से मिट जाते हैं. लेकिन यहाँ यदि इस जटिलता को आसान बनाकर आगे नहीं बढ़ा गया तो यह वचनों के प्रयोग और उसके स्वरुप पर केन्द्रित होने के कारण जटिल से जटिल होता जाएगा. ठीक उसी तरह 'मैंने जब पुस्तक देखी/देखा के प्रयोग से सम्प्रेषण स्पष्ट हो जाता है इसलिए यहाँ पर लिंग के आधार पर पाठ को जटिल बनाने से बचने की जरुरत है क्योंकि बेहतर भाषा का प्रयोग तो अभ्यास से ही संभव है इसलिए सीखने केक्रम में ही इसे जटिल बनाना उस भाषा से पाठक या अध्ययन कर्ता को दूर करना ही साबित होगा

संप्रेषण को केंद्र में रखकर ही क्लासरूम में भाषा संबंधी अध्ययन की आवश्यकता पर जोर देने की आवश्यकता हैसंप्रेषण के संदर्भ में प्रसिद्द विद्वान हेमचन्द्र पांडे लिखते हैंकि – " भाषा का मुख्य प्रयोजन संप्रेषण है भाषा और संप्रेषण का संबंध इतना घनिष्ट है कि भाषा को संप्रेषण के साधन के रूप में परिभाषित किया जाता है और भाषा की लगभग हर परिभाषा में संप्रेषण शब्द विद्दमान मिलेगा"- 6.

स्वाभाविक रूप से सभी विद्वान यह मानते हैं कि भाषा की उत्पति का मुख्य कारण ही संप्रेषण को मजबूत करना है इसीलिए यह संकेतों के साथ विकसित होते हुए भाषा के रूप में हमारे सामने समृद्ध रूप में मौजूद है स्पष्ट है कि भाषा निर्माण एक प्रक्रिया के तहत होता है. इसलिए किसी भी भाषा को एक प्रक्रिया के तहत ही सीखा जा सकता है. क्लासरूम में इसी पद्धति का प्रयोग करना चाहिए. इस पद्धति में यह देखना सबसे अधिक जरुरी है कि जिन वाक्यों में विचार व्यक्त किए जा रहे हैं उसका संप्रेषण के लिहाज से कितना अधिक से अधिक उसे सटीक किया जा सकता है यदि बातें संप्रेषित होते हुए भी कुछ अशुद्धता है तो उसे एक प्रक्रिया के तहत ही दुरुस्त करने की योजना होनी चाहिए

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि किसी भी भाषा का संबंध उसकी संस्कृति से गहरे अर्थों में जुड़ा होता हैइसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि भाषा या साहित्य पढ़ने – पढ़ाने के क्रम में सांस्कृतिक अध्ययन को विशेष रूप से महत्व दिया जाए साथ ही भाषा और साहित्य के संदर्भ में संप्रेषण को केंद्र में रखकर ही विचार किया जाना अधिक श्रेयस्कर है.

क्लासरूम में हिंदी साहित्य पढने-पढ़ाने के क्रम में इसे शुद्धतावादी रवैयों से बचाया जाना जरुरी है ताकि छात्र भाषा और साहित्य को आसन प्रक्रिया के माध्यम से ग्रहण कर सकें जिससे उनके अंदर उस भाषा की सांस्कृतिक समझ भी विकसित हो सके

हिंदी साहित्य के संदर्भ में ये बातें इसलिए भी जरुरी है क्योंकि भारतीय समाज संस्कृति और भाषा के आधार पर अपनीविविधताओं के लिए जाना जाता है. ऐसे में स्वाभाविक है कि विविध संस्कृतियों का प्रभाव हिंदी साहित्य पर पड़ेगा इसलिए यदि हम भारतीय साझा संस्कृति को भाषा या साहित्य को समझने में प्रयोग करते हैं तो यह सरलता और सहजता के साथ ग्रहणीय हो जाता है. अतः सांस्कृतिक प्रयोगों की शैली पर गहराई से विचार और इसका प्रयोग आवश्यक है.

संदर्भ ग्रंथ:-

1. महात्मा गाँधी, राष्ट्रपिता बापू के वचन, हिंदी आन्दोलन, लक्ष्मीकांत वर्मा, हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग प्रकाशन, पृ. सं. – 1.
2. शर्मा, रामविलास, मैथिली और हिंदी, जनपथ पत्रिका, भाषा विशेषांक, जनवरी-फ़रवरी 2011, पृ. सं. 100.
3. बाबा नागार्जुन, मैथिली और हिंदी, जनपथ पत्रिका, भाषा विशेषांक, जनवरी-फ़रवरी 2011, पृ. सं. 108.
4. बाबा, नागार्जुन, मैथिली और हिंदी, जनपथ पत्रिका, भाषा विशेषांक, जनवरी-फ़रवरी 2011, पृ. सं. - 111.
5. डॉ. अमरनाथ, भारत की भाषा नीति : संविधान से जिरह, अपनी भाषा की लोक यात्रा, सं – अरुण होता, आनंद प्रकाशन, कोलकाता, पृ. सं – 133.
6. हेमचन्द्र पांडे, भाषा और संप्रेषण, भाषा, साहित्य और संस्कृति, सं – विमलेश कान्ति वर्मा, ओरिएंट लांगमैन प्रकाशन, पृ. सं. - 5.

सहायक ग्रंथ :-

1. शर्मा, रामविलास, भाषा और समाज, 2002, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.
2. Chomsky, Noam, Logical structure of linguistic theory, 1985, University of Chicago press, Chicago.

3. वर्मा, लक्ष्मीकांत, हिंदी आन्दोलन, 1964, हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग.
4. तिवारी, प्रमोद कुमार, जनपथ पत्रिका, भाषा विशेषांक, जनवरी-फ़रवरी, 2011.
5. चटर्जी, सुनीति कुमार, भारतीय आर्य भाषा और हिंदी, 1954, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.
6. मिश्र, अशोक, बहुवचन पत्रिका, रामविलास शर्मा विशेषांक, अक्टूबर-दिसंबर 2012, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा प्रकाशन
7. वर्मा, विमलेश कान्ति, भाषा साहित्य और संस्कृति, ओरिएंट लांगमैन प्रकाशन, 2007.
8. सिंह, अविनाश कुमार, इस्पातिका पत्रिका, आदिवासी विशेषांक, जनवरी-जून, 2012.
9. होता अरुण, अपनी भाषा की लोक यात्रा, आनंद प्रकाशन, कोलकाता, संस्करण : 2018.

LBP PUBLICATION